THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180952
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—43—30-1-71—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H81.6 Accession No G H 2453

Author S22K

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

कृषक-क्रन्दन।

(परिवर्धित)

लेखक—

कविवर सनेही.

प्रकाशक—

शिवनारायण मिश्र,

प्रताप पुस्तकालय, कानपुर.

तृतीय संस्करण २०००

१९२३

मूल्य तीन आना.

प्रकाशक—
श्री शिवनारायण मिश्र,
प्रताप पुस्तकालय
कानपुर।

प्रथम संस्करण—२०००
१९१६

द्वितीय संस्करण—२०००
१९१८

तृतीय संस्करण—२०००
१९२३

समर्पण ।

हे भारत के ज़मींदारगण ! हे श्रीमानो !
दया धर्म धर हृदय धर्म्म अपना पहिंचानो ।
बे-सुध ऐसे रहो न अब यों लम्बी तानो ;
कृषक तुम्हारे मूल, इन्हें निज जीवन जानो ।
एक कृषक ने किया अश्रुजल से तर्पण है ।
इसीलिए यह भेंट आप ही को अर्पण है ॥

निवेदन ।

वर्तमान हिन्दी कवियों में बहुत ही कम ऐसे होंगे जिन्हें भाषा के प्रवाह और ओज पर उतना प्रभुत्व प्राप्त हो जितना कविवर सनेही जी को। इस पुस्तिका में जो कुछ है सनेही जी की कुछ घड़ियों मात्र की कृति है। सनेही जी उस कोटि के कवियों में है जिनको समय का प्रवाह नहीं बनाता किन्तु जो समय को बनाने के इच्छुक होते हैं। सनेही जी किसानों और ग़रीबों के कवि हैं। आपकी प्रत्येक कविता आपके हृदय का प्रतिविंब है। विरला ही कठोर हृदय होगा जो कृषकों के इस क्रन्दन को पढ़कर गद्गद न हो उठे। सनेही जी को इस बात का गर्व है कि आप कृषिजीवी परिवार के हैं, और किसानों, विशेषतः अवध के दुःखिया किसानों, की दीन दशा का दृश्य अपनी आँखों देख चुके हैं। भूस्वामियों का किसानों के साथ दुर्व्यवहार देखकर ही आप उन्हें सम्बोधन करते हुए कहते हैं—

एक कृषक ने किया अश्रुजल से तर्पण है।
इसीलिए यह भेंट आपही को अर्पण है॥

कानपुर
विजयादशमी १९८०

शिवनारायण मिश्र वैद्य.

कृषक-क्रन्दन ।

दयानिधे ! फँस काल चक्र में दीन हुआ हूँ।
मन मलीन तन छीन महा बल-हीन हुआ हूँ।
जल से बिछुड़ा गर्म रेत का मीन हुआ हूँ ।
घिरा घोर दारिद्र्य उसी में लीन हुआ हूँ ।
प्रभो ! आपके सिवा शरण अब कहीं नहीं है।
जाता हूँ मैं जिधर उधर ही नहीं नहीं है ॥

दीनबन्धु ! क्या व्यथा कहूँ मैं अपने मन की ।
नहीं जगत् में जगह कहीं निर्बल निर्धन की ।
समता होती नहीं सुदामा की इस जन की ।
चावल वह दे सके, भेंट को यहाँ न कनकी ।
रही दीनता एक, और कुछ पास नहीं है ।
सिवा आप के और किसी से आस नहीं है ॥

सुनो कृपानिधि दीन कृषक की रामकहानी ।
किस प्रकार मन मार हार मरने की ठानी ।
कैसा बीता बालपना किस भाँति जवानी ।
क्यों कुसमय में हाय ! मृत्यु सर पर मँडलानी ।
किस प्रकार इस दुखी हृदय में छेद हुआ है ।
कितना लहू सफ़ेद प्रेम-विच्छेद हुआ है ॥

भरापुरा था भवन धान्य धन था, क्या कम था?
धन्धा कोई और न था खेती उद्यम था ।
भैंसें थीं दो तीन दूध मिलता हरदम था ।
मैं बालक था मुझे कभी कुछ रञ्ज न ग़म था।
जीवित था जब पिता सफल मेरा जीना था ।
काम यही, बस, खेल कूद, खाना पीना था ॥

पण्डित मुल्ला जँचा रङ्ग सब ही का फीका ।
कभी मुहल्ला रटा न मैंने भैयाजी का ।
मुझे भरोसा रहा सिर्फ़ माता धरती का ।
पढ़ना लिखना जान पड़ा घातक है जी का ।
फाल गिनी निब, हरिस होल्डर समझा मैंने ।
करिया अक्षर भैंस बराबर समझा मैंने ॥

पेली सौ सौ डण्ड जवान मुचण्ड हुआ मैं।
करता दिल से रहा खेत के लिए दुआ मैं।
होते अगर न बैल खींचता स्वयं जुआ मैं।
कहता घर में 'देख, बली हूँ बड़ा, बुआ मैं'।
रग रग में क्या कहूँ जोश जो भरा हुआ था।
देख देख कर मुझे पिता भी हरा हुआ था॥

हाय! अचानक काल-चक्र ने चक्कर खाया।
चूहे मरने लगे प्लेग जब घर में आया।
पिता पड़े बीमार दौड़ कर वैद्य बुलाया।
नाउत आये, मान दान सब कुछ करवाया।
हुआ मगर सब व्यर्थ, पिता जी स्वर्ग सिधारे।
रही न दमड़ी पास रह गये हम अधमारे॥

'कूड़ामल' ने कहा मुझे यक रोज़ बुलाकर।
समझो आय हिसाब बाप का अपने आकर।
गया दौड़ता हुआ वहाँ जब पहुँचा जाकर।
बोले लाला हमें बही अपनी दिखलाकर।
"गया पत्यौरुस साल नाज जो उसकी बाढ़ी।
अब तक बाक़ी रही आज है हमने काढ़ी॥

रहा आठ मन तभी, हुआ सत्ताइस मन*अब।
बोलो भैया, कहो इसे भुगतैहौ अब कब ?"
बोला मैं "घर गाय भैंस जो कुछ है वह सब ;
ले लीजे ब्यौहरे आप का जी चाहे जब।"
बोले लाला ललकि, "अपन हरहा सब लाओ।
बैल छोड़िकै, गाय भैंस सब हमें लगाओ"॥

मन ही मन सोचता हुआ मैं घर में आया ।
अब तो बिगड़ा और खेल सब बना बनाया ;
लाला जी ने मुझे जल्द फिर पकड़ बुलाया।
देकर भैंसें जान बचाई, पिंड छुड़ाया ।
किसी तरह मैं लगा महा दुर्दिवस बिताने।
साग पात से भरा पेट, सब लगा हिताने॥

रही चैत की आस खेत पर डेरा डाला ।
रहकर आठों पहर बना उसका रखवाला।
हाय ! दैव ने सभी तरह मेरा घर घाला।
महा विषम पड़गया रात को यक दिन पाला।
हरे हरे सब खेत देखकर होते पीले ।
रहे न होश दुरुस्त होगये बन्धन ढीले॥

---

* ८ डथोढ़ १९,-१२डथोढ़ १८,-१८ डथोढ़ २७

सींच साँच भी दिया मगर कुछ काम न निकला।
बेचबाँच जो लगा दिया वह दाम न निकला।
मुँह को आता लिया कलेजा थाम, न निकला।
कभी और कुछ सिवा राम का नाम न निकला।
लट्ठ हाथ में लिए द्वारपर शहना आया।
भूसा घासा बेंच पोत उसको भुगताया॥

राम राम कर किसी तरह वर्षा फिर पाई।
ज्वार, बाजरा, धान, मका की हुई बोवाई।
सूखा सावन रहा भरा भादौं भी भाई।
पानी कैसा, एक बूँद भी कहीं न आई।
हाय! कहूँ क्या कहीं ठिकाना रहा न बाक़ी।
खेत खागया सभी कि दाना रहा न बाक़ी।

आतेही बस कौंर वार पर वार हुए फिर।
पटवारी यम, ज़िलेदार तैयार हुए फिर।
हा! हा! सोलौ कर्म, कर्म अनुसार हुए फिर।
पड़ी मार पर मार उज़्र बेकार हुए फिर।
बैल बेंच कर हाय! चवन्नी फिर भुगताई।
पटवारी की भेंट किया कुछ, जान छुड़ाई।

मगर हाय ! दुर्दैव दुष्ट ने पिण्ड न छोड़ा ।
बेदखली का लगा और मुझपर यक कोड़ा ।
देता फिरता घूस कहाँ से लाता तोड़ा ।
दौड़ा जिसके पास गया उसने मुँह मोड़ा ।
राजा साहब रहे एक कहने को बाक़ी ।
होकर महा अधीर शरण उनकी भी ताकी ॥

मगर वहाँ मुख्तार दाल क्या गलने देते ।
स्वयं बला थे, बला भला क्या टलने देते ।
उनसे यम था मात चाल क्या चलने देते ।
थे वह विषका बेल, सुफल क्या फलने देते ।
राजा जी को हाय उन्होंने यह समझाया ।
"मोटा है यह, माल बहुत इसने उपजाया"॥

राजा साहब हुए क्रुद्ध बोले यह, "चल चल ।
आया है क्यों यहाँ ? अबेहट, दूर निकल, चल ।
जा अपने घर धूर्त्त, दुष्ट, सम्मुखसे टल, चल ।
माया मत रच अब न बहुत तू कर छलबल, चल ।
यही हमारा हुक्म इजाफ़ा, बस जो देगा ।
पावेगा वह खेत, सेंत ही क्या तू लेगा ?"

रोया धोया बहुत उन्हें पर दया न आई ।
देख मेरे दाँत उन्होंने आँख दिखाई ।
अपना मालिक कहूँ उन्हें या कहूँ कसाई ।
हाय ! निकाला गया मार भी मैंने खाई ।
वज्र हृदय होगया, दीनता पर न पसीजा ।
दौड़ा धूपा बहुत मगर यह हुआ नतीजा ॥

बहुत रोचुका हाय भाग्य को रोता क्या अब !
सूखा था सब खेत भला मैं बोता क्या अब !
आँसू ही थे बहुत खोदता सोता क्या अब !
दौड़ धूप में समय टला तब होता क्या अब !
आया अगहन गहन अधकरी है भुगताना ।
मुझको है खल रहा रोज डेरे में जाना ॥

होते ही बस शाम सिपाही आजाते हैं ।
गाली, जूता, लात रोज ही बरसाते हैं ।
सब के सब बे-दर्द, दया कब वह लाते हैं ।
पाते हैं कुछ नहीं, खार इस में खाते हैं ।
देवे कौन उधार, महा नादार हुआ हूँ ।
खाता हूँ नित मार हाय बे-मौत मुआ हूँ ॥

मजदूरी से गुजर किसी विध कर लेता हूँ।
किसी तरह से उदर-दरी को भर लेता हूँ।
अँकरा, मकरा, मोठ, मसूर, मटर लेता हूँ।
उतने ही में बाँट बराय सपर लेता हूँ।
सालन बथुआ मिला कि मेथी मिलजाती है।
कहीं शाम तक एक पनेथी मिल जाती है॥

जब चिल्लाकर भूख, भूख बालक रोते हैं।
टुकड़े सौ सौ हाय कलेजे के होते हैं।
क्या दुखिया के पूत कभी सुख से सोते हैं।
रोते हैं, मुँह सदा आँसुओं से धोते हैं।
जब घर में कुछ न हो कहो कोई क्या राँधे?
रहते सारा दिवस हाय योंही मुँह बाँधे॥

सुखी वह अब कहाँ? बदन पर छाई जर्दी।
कपड़े तन पर नहीं, कठिन पड़ती है सर्दी।
जिलेदार की मार हाय! ऐसी बे-दर्दी।
विष खाकर सो रहूँ नहीं होती नामर्दी।
ये बालक अनजान शरण किसकी जायेंगे।
पालेगा फिर कौन ये किसके कहलायेंगे॥

चोरी या छल करूँ, ये मेरा काम नहीं है।
धंधा कोई करूँ ! गाँठ में दाम नहीं है ।
जाऊँ अब मैं कहाँ, कहीं विश्राम नहीं है !
जीना दूभर हुआ, कभी आराम नहीं है ।
थी जो मुआफ़ी एक सो वह भी ज़ब्त हुई है ।
सभी तरह से अक़्ल हायरे ! ख़ब्त हुई है ॥

क्यों होती यह दशा अगर मैं कृषक न होता।
होता मैं मज़दूर जोतता और न बोता।
सहता क्यों यों मार आबरू मुफ़्त न खोता ।
दिन भर करता काम रात में सुख से सोता।
क्यों बिकती यों हाय मुफ़्त में लोटा थाली !
क्यों खाता यों बात बात पर हरदम गाली !!

हे करुणानिधि ! कृपा करो, यह दशा निहारो।
कौन हमारा और यहाँ पर आप विचारो ।
गज की भाँति विपत्ति फन्द से मुझे उबारो।
हे प्रभु विपदाहरण ! दीन के दुःख निवारो।
दयानिधे ! अब रही देश में दया न बाक़ी ।
मनुष्यत्व है कहाँ ? कहीं, है हया न बाक़ी ॥

हे प्रभु! अब इस क्रूर देश का मुँह न दिखाना ।
मेरी विनती यही यहाँ मत अब जन्माना ।
यदि स्वकर्म अनुसार यहाँ मुझको हो आना ।
कुछ भी रचना और, किन्तु मत कृषक बनाना ।
शिक्षित सभ्य-समाज ग्लानि जिससे करता है ।
वह हैं उसके शत्रु कि जिन पर वह मरता है ॥

भारत में दे जन्म चहे फ़ौजों भेजवाना ।
जी चाहे नेटाल भेजकर खान खुदाना ।
है मुझको मंजूर वहाँ पर कोड़े खाना ।
दीनबन्धु ! मत कृषक हिन्द का मुझे बनाना ।
जोतें बोवें मरें खपें भर पेट न खावें ।
बेदखली को ज़मींदार उसपर डरवावें ॥

—⊙:※:⊙—

सीधे सादे नम्र न कहीं अकड़ने जाते ।
सदा शांति-प्रिय धीर न कहीं झगड़ने जाते ।
रहते सबके मित्र नहीं हैं लड़ने जाते ।
यद्यपि झंझट में न कभी वह पड़ने जाते ।
उस पर भी मुख्तार कचेहरी में बुलवाते ।
झगड़ेलू हैं आप, मगर उनको बतलाते ॥

सहते हैं नित शीत, धूप, जिल्लत, हैरानी।
जमींदार की डाँट लात अति कठिन कुबानी।
रहते हैं चुपचाप कहें यदि दुःख कहानी।
सुन कर होवें एक बार पत्थर भी पानी।
दयासिन्धु! अब दया आप की होना चहिए।
कृषकों के दुख पुञ्ज "सनेही" खोना चहिए॥

आर्त्त-कृषक ।

घटा घोर घिरती चली आ रही थी ।
चपलता चपल चपला दिखला रही थी ।
मलारें मनुज-मण्डली गा रही थी ।
उदासी मगर एक दिश छा रही थी ।
कृषक एक अति व्यग्र व्याकुल खड़ा था ।
निराशा भरे यह बचन कह रहा था ॥

"चले आओ ऐ बादलो आओ, आओ ।
तुम्हीं आके दो चार आँसू बहाओ ।
दुखी हैं तुम्हारे कृषक दुख बँटाओ ।
न कुछ बन पड़े जो, तो बिजली गिराओ ;
न रोयेंगे हम, धज्जियां तुम उड़ा दो ।
किसी भाँति आपत्ति से तो छुड़ा दो ॥

ज़रा देखो क्या है बनी गत हमारी ।
कि देखी नहीं जाती हालत हमारी ।
नहीं मौत से कम मुसीबत हमारी ।
नहीं साथ अब देती हिम्मत हमारी ।
करें क्या बहुत जान पर खेलते हैं ।
उठाते हैं सख्ती, कड़ी झेलते हैं ॥

कड़ी धूप में, लू में, हैं हल चलाते ।
ज़मीं जलती है, पैर हैं चल चलाते ।
न इञ्जिन यहाँ है, न हैं कल चलाते ।
सभी काम हैं हाथ के बल चलाते ।
किया करते हैं एक लोहू पसीना ।
कहे जाते हैं हाय ! तब भी कमीना ॥

नहीं मिलती है पेट भर हमका रोटी ।
न जुड़ता है कपड़ा सिवा एक लँगोटी ।
बनी झोपड़ी माँद से भी है छोटी ।
कहें और क्या, अपनी क़िस्मत है खोटी ।
नहीं ऐसा दुख जो उठाया न हमने ।
कभी किन्तु दुखड़ा सुनाया न हमने ॥

कर क्या कि अब जान पर आ बनी है ।
नहीं दृष्टि आता दया का धनी है ।
कहें मित्र क्या अब जो मन में ठनी है ।
नहीं हाय ! हीरे की मिलती कनी है ।
दरिद्री हैं, घर में नहीं एक दाना ।
कहाँ अब है दुनिया में अपना ठिकाना ?

शरण किसकी जायें, किसे हम पुकारें ।
कहाँ तक बहायें कहो अश्रुधारें ।
हहा शोक ! जिनपर कि हम प्राण वारें ।
हमारा अहित इस तरह वे बिचारें ।
निकलने न दें कोई उठने की सूरत ।
बनाये रहें हमको मिट्टी की मूरत ॥

जमीं जिसमें दिन रात यों सर खपायें ।
उसे खाद दें, हड्डियाँ तक घुलायें ।
मगर हाय ! कुछ लाभ लेने न पायें ।
जमींदार बेदखल कर दें, छुड़ायें ।
हमें प्राण से भी अधिक है जो प्यारी ।
न आखिर को हो सकती है वह हमारी ॥

बरस दो बरस ईतियों ने सताया ।
कभी भीतियों ने महा भय दिखाया ।
किसी भाँति मर खप बना खेत पाया ।
समय हाय बेदखल होने का आया ।
गये बीते होते हैं बरसात बीते ।
नहीं बचने पाते बरस सात* बीते ।

* अब दस साल हो गये हैं ।

अगर मृत्यु ने बीच में धर दबाया।
बपौती में बच्चों ने दुख सिर्फ़ पाया।
न क़ानून ने स्वत्व उनका बताया।
बराबर हुआ इनमें अपना पराया।
अधिक दे इज़ाफ़ा, वही खेत पावे।
मगर साथ ही भेंट भी कुछ चढ़ावे॥

जिसे देखिये है वह आँखें दिखाता।
पियादा भी है शाह बन बन के आता।
न दो कुछ तो है धमकियाँ दे के जाता।
"अभी देख इसका मज़ा तू है पाता"।
है खाली हुआ टेंट ही देते देते।
चढ़े भेंट हम भेंट ही देते देते॥

ज़मींदारों के पेट भरते नहीं हैं।
ये खाते हैं इतना अफरते नहीं हैं।
किसानों पै क्या ज़ुल्म करते नहीं हैं।
अभागे हैं हम हाय! मरते नहीं हैं।
जिलेदार जी भर हमें लूटते हैं।
न पटवारियों से भी हम छूटते हैं॥

नहीं नाम दिल में है उनके दया का
ठिकाना कहाँ मोह का या मया का ।
नहीं चिह्न रखते हैं मन में हया का
समझते हैं वह पुण्य इसमें गया का ।
लगा दो बखेड़ा न अब पिण्ड छोड़ो
बने जिस तरह से किसानों को गोड़ो ॥

वे ब्यौहर जिन्हें हम समझते हैं इश्वर ।
निकलते हैं बहुधा यमों से भी बढ़ कर ।
भरा धान्य धन से है उनका सदा घर ।
नहीं खत्म फिर भी है ड्योढ़े का चक्कर ।
उधर, हाय, हैं ब्याज पर ब्याज लेते ।
इधर भाव से भी अधिक नाज लेते ॥

महीनों कभी तुम न सूरत दिखाते ।
खड़े खेत के खेत हैं सूख जाते ।
लजाते न पर्ज्जन्य हो तुम कहाते ।
सता कर हमें कौन सी कीर्ति पाते ।
स्वयं मर रहे हैं उन्हें मारना क्या ।
बने दीन हैं उनको दुतकारना क्या ॥

सुनायें किसे दुःख की हम कहानी ।
हमारा यहाँ कौन है दोस्त जानी ।
बहुत मिट चुके हैं बहुत ख़ाक छानी ।
लिया स्वाद क्या हमने करके किसानी ।
नहीं कटते दिन पेट हम काटते हैं ।
ख़ुशी बोते हैं हाय ! ग़म काटते हैं ॥

गये गुज़रे संसार में हीन हैं हम ।
सुदामा से भी सौगुने दीन हैं हम ।
पड़ा भाड़ में हो जो वह मीन हैं हम ।
महा घोर अज्ञान में लीन हैं हम ।
न हम पर कभी कोई करता नज़र है ।
बला पर बला और अपना ये सर है ॥

बदल ही गई देश की है हवा कुछ ।
नहीं अब रही हाय ! दुख की दवा कुछ ।
हैं हम बे-ज़बाँ और कहना है क्या कुछ ।
निवेदन करेंगे न इसके सिवा कुछ ।
"जहाँ हों महाराज श्रीजार्ज पञ्चम ।
हमारे ये आँसू बरस दो वहाँ तुम" ॥

सुनी यों जो दुखिया कृषक की कहानी।
कही आप बीती सब अपनी ज़बानी।
दया-वश हुए सबके दिल पानी पानी।
न रोकी रुकी आँसुओं की रवानी।
यकायक उधर यक हृदयवान आया।
मधुर गीत उसने कृषक को सुनाया॥

(गीत)

"औरों के सुख को दुःख बिसारे तुम्हीं तो हो।
प्राणों के प्राण अपने सहारे तुम्हीं तो हो।
बिगड़ी दशा को अब भी सँवारे तुम्हीं तो हो।
मरने न देते भूख के मारे तुम्हीं तो हो।
॥ सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्हीं तो हो॥

वह मन्दमति है, नीच तुम्हें कोई गर कहे।
चुपचाप तुमने जितने पड़े दुःख सब सहे।
पी पी के खून, रह गये आँसू नहीं बहे।
गुण ज्ञान-हीन होके भी सिरमौर ही रहे।
॥ सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्हीं तो हो॥

आशा तुम्हारे बाहुओं की लोग करते हैं।
नृप भी तुम्हारी रक्षा के उद्योग करते हैं।
कुछ योगियों से कम न कृषक योग करते हैं।
दम से तुम्हारे लोग ये सुख-भोग करते हैं।
॥ सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्हीं तो हो ॥

प्यारी प्रकृति की देखते तुम नित्य ही छटा।
यह हिस्सा बस तुम्हारा है, इसमें न कुछ बँटा।
ठंढी हवा वो पेड़ों पै चिड़ियों का जमघटा।
मुनियों के चित्त को भी जो देता है लटपटा।
॥ सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्हीं तो हो ॥

बोते हो एक दाना तो सौ कर दिखाते हो।
आधे ही पेट खाते हो सब को खिलाते हो।
कौशल है और क्या यहाँ अब तुम जिलाते हो।
हम क्या सँभल सकेंगे जो तुम गिरते जाते हो।
॥ सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्हीं तो हो ॥

मन छोटा मत करो ऐ मेरे मन चले कृषक।
यह व्यर्थ जायगा न जो श्रम करते हो अथक।
श्रद्धेय सब के बन के रहोगे नहीं है शक।
लेंगे बलायें दौड़ के राजा से रङ्क तक।
॥ सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्हीं तो हो ॥

शिक्षा का है प्रचार भरतखण्ड में बढ़ा।
उतरा है भूत जो कि था अज्ञान का चढ़ा।
प्रत्येक व्यक्ति जो कि है कुछ भी लिखा पढ़ा।
समझेगा वह अगर न रहा स्वार्थ में मढ़ा।
॥ सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्हीं तो हो ॥

जो कुछ है देश में वो तुम्हारी कमाई है।
पाई न हम ने एक भी औरों की पाई है।
अपना भी है भला जो तुम्हारी भलाई है।
यह सच्ची बात विज्ञ जनों ने बताई है।
॥ सच्चे सपूत देश के प्यारे तुम्हीं तो हो ॥

ये सब देख सुन हाय सुन हो गया मैं।
न आपे में फिर रह सका खो गया मैं।
कहा मैं ने यारो सँभालो गया मैं।
गया चेत ही कह के यह लो ! गया मैं ।
ख़बर कुछ नहीं है कि फिर क्या हुआ था ।
कृषक वह बचा था कि ग़म से मुआ था ॥

दुखिया किसान ।

कौन सुनेगा दीन जनों की रामकहानी;
दीनबन्धु भी भूल गये वह बान पुरानी ।
रहे बहुत दिन मौन, सही सबकी मनमानी;
आँखों से बह गया धैर्य होहोकर पानी ॥
कल न सही तो काल ही, किसी तरह कट जायगा ।
रोयंगे कुछ देर तो, कुछ तो दुख घट जायगा ॥१॥

सहृदय पाठक हृदय ज़रा अपने सँभाल ल;
आहें ये अरमान आज अपने निकाल लें।
कानों में कुल क्रूर रुई या "काक" डाल लें;
और मूँद लें नेत्र, नशीली सुरा ढाल लें ॥
बन जावें बेहोश यों, कुछ प्रभाव उनपर न हो ।
फट न कहीं जाये, अगर हृदय प्रौढ़ पत्थर न हो ॥२॥

हाय ! वही हम, प्रथम सभ्यता जिनसे फैली;
हुए अजान, असभ्य हुई ऐसी मति मैली ।
भरी निरन्तर लोक-उदर की हमने थैली;
हुए तिरस्कृत किन्तु, जगत की देखी शैली ॥
परम पतित समझे गये, छोड़ा सबने साथ है ।
हाय ! हवन करते हुए, जला हमारा हाथ है ॥३॥

हमने पहले पहल वस्त्र सबको पहनाये;
पेड़ों के वे पत्र और मृग चर्म छुड़ाये।
जिनसे थे सब लोग भयानक वेश बनाये;
पर मर्म्मान्तक दु.ख हाय! पलटे में पाये॥
सबल जिन्हें करते गये, वही गला घोंटे गये!
हा! कपास ही की तरह हमको वे ओटे गये॥४॥

इस भारत में कहो नहीं क्या क्या उपजाया?
सच पूछो, तो इसे हमीं ने स्वर्ग बनाया॥
यह माना, है यहाँ प्राकृतिक दृश्य सुहाया;
पर केवल छवि देख पेट किसने भर पाया?
कहते हैं सब अन्न ही, प्राणों का आधार है।
जो क्षुधार्त्त है उसे तो सूना सब संसार है॥५॥

हल-मन्दर से क्षेत्र-जलधि हमने मथ डाले,
केवल चौदह नहीं, सैकड़ों रत्न निकाले।
बड़े बड़े भूपाल, मुनीश्वर हमने पाले;
किये अन्त में गये हाथ नीले, मुँह काले॥
देख यहाँ की यह दशा होता अति सन्ताप है।
हल-बाहक के हाथ का जल तक पीना पाप है॥६॥

जो पलते हैं, सदा हमारे टुकड़े खाकर,
रुधिर चूसते वही अन्त में अवसर पाकर।
बड़ा कर दिया जिन्हें विभव, सम्पदा बढ़ा कर;
पटक रहे हैं वही हमें अब उठा उठा कर॥
काल-चक्र के क्या कहें कैसे चक्कर हो गये!
(गुरु जी तो गुड़ ही रहे, चेले शक्कर हो गये)॥७॥

ग्राम, नगर क्या देश भरे पूरे हैं हमसे;
सब का पोषण-भार लिया है अपने दमसे।
पर, खलते हैं लोग हमी को बढ़ कर यमसे;
सुनिये वह सब कथा आज हमसे क्रम क्रम से॥
करते इस संसार में नरक-भाग की पूर्ति हैं।
दुर्बलता, दुख, दीनता, दरिद्रता की मूर्ति हैं॥८॥

रचते हैं कृषि-यज्ञ खेत को कुण्ड बनाकर;
करते सकल विधान मन्त्र से बिरहे गा कर।
धान्य और धन धाम होमते हैं श्रद्धा कर;
देते हैं जब देव, यज्ञ-फल हाथ बढ़ा कर॥
अन्यायी राक्षस उसे हमसे लेते छीन हैं।
बन जाते इस तरह से हम कौड़ी के तीन हैं॥९॥

भरत-भूमि के बने महा दुखिया किसान हैं;
कुछ भी पाते नहीं, लड़ाते लाख जान हैं।
जर्जर तन हो गये, खिन्न, दुख-भरे, म्लान हैं;
कहाँ सो गये दीनबन्धु, करुणानिधान हैं!
एकदीन के लिये भी परम दया आती रही।
कोटि कोटि हम हैं, नहीं क्या वह अब छाती रही॥१०॥

जहाँ सोज*तमूर चन्द ही रोज़ रहा था;
जले हज़ारों ग्राम, रुधिर का नद उमहा था।
जो जो दुख आ पड़ा, धैर्य्य से उसे सहा था;
दीन बचन, हा हन्त न हमने कभी कहा था।
बैर पड़ा पापी उदर हारे इसकी लाग से।
हा! हा! अब तो जल रहे हैं दोज़ख की आग से॥११॥

पक्षी भी भर पेट कहीं चुग कर लेते हैं;
वन्य जन्तु भी उदर किसी विध भर लेते हैं।
प्राणों का आधार, कुछ न कुछ कर लेते हैं।
क़र्ज़ किसी से कभी न खर, शूकर लेते हैं॥
और एक हम हैं कि नित बढ़ता ऋण का भार है।
फिर भी हमको पेट भर प्राप्त नहीं आहार है॥१२॥

---

* जगद्दाहक

मजदूरी भी समय समय पर कर लाते हैं;
जो कुछ मिलता, कहीं शाम तक घर लाते हैं।
चूनी लाते कभी, कभी चोकर लाते हैं;
तम्बाकू भी चिलम दो चिलम भर लाते हैं।
उड़ा धुएँ के साथ ही देते हृद्गत ताप हैं।
धोखा देकर पेट को सो रहते चुप चाप हैं ॥१३॥

कपड़े कसे, किसी भाँति लज्जा ढक जाती;
घर वाली की कभी नहीं है बक झक जाती।
वे दुख देती शीत, हाय छाती पक जाती;
सिकुड़े सिकुड़े देह, रात भर में थक जाती ॥
ऊँची नीची भूमि है, फटा पुराना टाट है।
अपने शयनागार में शर-शय्या का ठाट है ॥१४॥

हाथ हाथ दीवार, धरा उसपर छप्पर है,
टूटा टटवा लगा, टकटकी लगी उधर है।
चोरों का डर नहीं, हिंस्र जीवों का डर है;
है यह नरक-निवास हाय ! काहे का घर है ॥
आँधी, पानी, धूप की, नहीं जरा भी रोक है।
साफ नजर आता यहाँ मृत्यु लोक, यह लोक है ॥१५॥

बलों की भी साथ हमारे क़िस्मत फूटी;
छाई है बस एक छपरिया उनपर टूटी ।
पड़ी घास है वही सबेरे जो थी छूटी
पड़े सोचते हम कि कहीं मिलती वह बूटी ॥
चर लेने से जिसे फिर चारा कभी न चाहते ।
तो सम्भव था कुछ दिवस अपना साथ निबाहते ॥१६॥

ऋण से अपना रोम रोम तक हाय लदा है;
कैसे होंगे उऋण यही चिन्तना सदा है ।
कहाँ सूद दर सूद, सूद तक नहीं अदा है,
क्या जाने भगवान ! भाग्य में हाय ! बदा है ॥
कभी कभी तो रात भर तारे गिनते शोक में ।
होगा हम सा भाग्य हत और कौन इस लोक में ॥१७॥

अपना जीवन नहीं एक यह बीहड़ बन है;
यहाँ नहीं हैं फूल खिंचा काटों में तन है ।
हाकिम-हरहा हड़ें, ब्याघ्र-ब्योहर-गर्जन है;
सुपथ नहीं सूझता, रात दिन व्याकुल मन है ॥
बिच्छू के से डंक हैं पटवारी भी मारते ।
करली छाती बज्र है, हिम्मत कभी न हारते ॥१८॥

घोर परिश्रम, कठिन तपस्या हम करते हैं;
पड़ते विघ्न, परन्तु नहीं बहुधा डरते हैं।
आश-सिन्धु में पड़े डूबते हैं, तरते हैं
जीते ही हैं न तो, न तो हम अब मरते हैं॥
यद्यपि हैं हम कम नहीं बहुत बड़ा परिवार है।
पर अशक्तता-दैन्य से जीवन हम को भार है॥१९॥

हैं निर्लज्ज, अमान दे चुके जान नहीं हैं;
समझें हम को लोग मनुज-सन्तान नहीं हैं।
देते शिक्षित इधर पूर्ण क्यों ध्यान नहीं हैं,
आंखें उनके नहीं, हाय! या कान नहीं हैं॥
विपदा पर विपदा सदा हम पर है आती रही।
पुण्य भूमि से क्या दया बिल्कुल ही जाती रही॥२०॥

दया न कोई करे, दया की चाह नहीं है;
दैव सहावे दुःख, हमें परवाह नहीं है।
हम हैं कष्ट-सहिष्णु निकलती आह नहीं है;
होने पाता किन्तु हाय! निर्वाह नहीं है॥
देश-बन्धु ही बन रहे, हम को यम के दूत हैं।
हाय! स्वार्थ, अन्याय से खलते कुटिल कपूत हैं॥२१॥

हा न अगर विश्वास आप गाँवों में जायें
देखें, यदि दुर्दशा कलेजा थामे आयें ।
आती हैं नित नई सिरों पर हाय ! बलायें;
बच्चे दाबे हुए बगल में भूखी मायें ॥
भग्न-हृदय हैं, नग्न सी खेत निराने में लगीं ।
साग पात जो कुछ मिला उसके खाने में लगीं ॥२२॥

पतियों को लेगये लोग बेगार पकड़ कर;
जो कुछ बोले, ठीक कर दिया थप्पड़ जड़ कर ।
बहुत गये चुप चाप, खायँ क्या मार अकड़ कर ?
हुआ छूटना कठिन कठिन पञ्जे में पड़कर ॥
ज़मींदार हैं या कि वे निर्दय थानेदार हैं ।
हम बेचारों के लिये दार बने सबदार* हैं ॥२३॥

खेतों पर कुछ नहीं हाय ! अधिकार हमारा;
सुनती कुछ भी नहीं, उफ़् सरकार हमारा ।
कैसे हो, हो कहाँ, कहो, सुविचार हमारा;
एक करे तो करे, न्याय कर्तार हमारा ॥
सो जीते तो जगत् में इस की कुछ आशा नहीं ।
इसीलिये तो हमें अब जीवन-अभिलाषा नहीं ॥२४॥

---

* शूली

भरने भर को हमें पोत भरना क्या कम है;
नज़र, भेंट ने और कर दिया नाकों दम है।
कलह परस्पर और पुलिस का भी ऊधम है;
हैं निरीह हम, हुआ सितम पर हाय सितम है॥
घोर पतन तो हो चुका, रही श्वास ही शेष है।
नहीं जानते भाग्य में लिखा और क्या क्लेश है॥२५॥

कैसी शिक्षा, यहाँ पेट में आग लगी है;
बन्द हमारे लिए अभी तक नहीं ठगी है।
रिश्वत का बाज़ार गर्म है कला जगी है;
किस की मति रह गई नहीं जो पाप-पगी है॥
मिलते हैं जितने हमें सभी लूटना चाहते
लुंज लवा पर बाज से, झपट टूटना चाहते॥२६॥

सच है जब दिन किसी जाति के गिर जाते हैं;
सबके मन बन्धुत्व-भाव से फिर जाते हैं।
जो करते अन्याय उन्हीं के सिर जाते हैं
पर वे ऐसे स्वार्थ-बुद्धि से घिर जाते हैं॥
अपना ही हित, अहित है उन्हें सूझ पड़ता नहीं।
सदियों तक मिटती कभी उनकी यह जड़ता नहीं।२७।

अगर हमारे बन्धु हमारे पिंड न पड़ते—
तो श्रम करते हुए न हम यों हाय ! उजड़ते ।
हमें लूटने पर न लोग यदि ऐसे अड़ते—
तो न निकम्मे बने, पड़े भवनों में सड़ते ॥
निकल पैठ कर कुछ कहीं। उद्यम-धन्धे देखते ।
अपना ही हित अहित तो कुछ वे अन्धे देखते ॥ २८ ॥

याद रहे यह अगर कहीं हम मर जायेंगे—
नरक-निवासी पितर न उनके तर जायेंगे ।
अस्थि, चर्म से पेट न उनके भर जायेंगे,
बन जब सारे खेत विकट ऊसर जायेंगे ॥
आठ आठ आँसू तभी रोयंगे मतिमन्द ये ।
लूट रहे हैं अभी तो लूट लूट आनन्द ये ॥ २९ ॥

प्रिय पाठक ! सुन चुके आज कृषकों का रोना;
बचा हुआ निज समय आप अब व्यर्थ न खोना ।
बने जहाँ तक दुखी जनों के आँसू धोना;
जब तक सँभलें ये न,नहीं कुछ उन्नति होना ॥
प्रति शत अस्सी तक यही भारत में आबाद है ।
बर्म्म-धुरी धारण किये इनमें ध्रुव, प्रह्लाद हैं ॥ ३० ॥